चतुर्थ अध्याय

जीवनीपरक उपन्यास 'विवेकानन्द' में जीवनमूल्य

चतुर्थ अध्याय

जीवनीपरक उपन्यास 'विवेकानन्द' में जीवनमूल्य

विषय प्रवेश

4.1 जीवनमूल्य : स्वरूप एवं व्याप्ति

4.1.1 स्वरूप

4.1.2 व्याप्ति

- क) वैयक्तिक जीवनमूल्य
- ख) समष्टिगत जीवनमूल्य
- ग) आध्यात्मिक जीवनमूल्य
- घ) भौतिक जीवनमूल्य
- च) नैतिक जीवनमूल्य
- छ) सौंदर्यमूलक जीवनमूल्य

4.2 जीवनमूल्यों का महत्त्व

- अ) व्यक्ति का विकास एवं नैतिकता की स्थापना
- आ) समाज की समृद्धि एवं विकास
- इ) संस्कृति रक्षण एवं संवर्धन
- ई) धर्म की स्थापना एवं अनुशीलन
- उ) आत्मानुभूति

4.3 'विवेकानन्द' उपन्यास में जीवनमूल्य

4.3.1 स्वाभिमान

4.3.2 सर्जनशीलता एवंम् श्रमप्रतिष्ठा

4.3.3 विवेक बुद्धि

4.3.4 सर्वधर्म सहिष्णुता

4.3.5 साहस एवं भयरहित जीवन

4.3.6 त्याग और समर्पण

4.3.7 वैज्ञानिक दृष्टिकोन

4.3.8 समदर्शन

4.3.9 सेवावृत्ति

4.3.10 निष्कामवृत्ति

निष्कर्ष ।

चतुर्थ अध्याय

जीवनीपरक उपन्यास 'विवेकानन्द' में जीवनमूल्य

विषय-प्रवेश :

आज हम 21 वीं सदी में यातयात और जनसंचार के साधनों से सराबोर जीवनयापन कर रहे हैं। भारतीय संतों की 'वसुधैव कुटूंबकम्' की भावना बाहरी रूप में साकार हो उठी है। मगर मानव ने अपना जीवन इतना गतिमान एवं असहज बना दिया है, कि वो संवेदनाशून्य बनता जा रहा है। उसके जीवन से नैतिक मूल्य गायब होने लगे हैं। यही कारण है कि आज का समाज भ्रष्टाचार, लूटमार, बलात्कार, दहशतवाद, सांप्रदायिक, धार्मिक द्वेष आदि समस्याओं से आहत पड़ा है। एक ओर जहाँ वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति जोर-शोर से चल पड़ी है, वही दूसरी ओर मानव हृदय में कुंठा, निराशा, वासनातिरेक, आशंका आदि ने घर बना लिया है। तिसरे महायुद्ध की आशंका ने सबके मन को भयातंकित कर किया है; परंतु महायुद्ध तो व्यक्ति-व्यक्ति के अंतर्मन में घटित हो रहा है। जिसमें मानवीय मूल्यों का विघटन हो रहा है।

साहित्य हमेशा से आदर्श समाज निर्माण में अग्रणी रहा है। हाँलाकि आज का मनुष्य निराशा, द्वेष, संघर्ष, आत्मपीड़ा में जीवन व्यतित कर रहा है, मगर चाह तो उसे शांति, प्रेम, अहिंसा की ही है। उसकी इसी चाह को बलवती बनाना, उसे चारित्र्यशील बनाना साहित्य का काम है। यही 'शिवेतरक्षतये'[1] का कार्य साहित्य करता आ रहा है।

जिस प्रकार अनावश्यक भागों को निकालने से पत्थर में पहले से विद्यमान मूर्ति दृश्य रूप में प्रकट होती है, उसी प्रकार सत्य, प्रेम, अहिंसा, सौहादर्य आदि मूल्य मानव मन में पहले से स्थापित है। इन मूल्यों पर अवगुणों की जो परत चढ़ रही है, वह मानव के सर्वांगिण विकास में बाधा डालती है। इन्हीं अवगुणों को मिटाकर अपने सच्चे स्वरूप की पहचान होने के लिए आदमी को प्रेरणा, मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। ये बातें भूत एवं वर्तमान के आदर्श स्वरूप महापुरुषों से ग्रहण की जा सकती है। डॉ. भटनागर जी का 'विवेकानन्द' उपन्यास इसी उद्देश्य से प्रेरित अमूल्य साहित्यिक निधि है।

---

1. अमंगल की हानी।

4.1 जीवनमूल्य : स्वरूप एवं व्याप्ति :

4.1.1 स्वरूप :

जीवनमूल्य के स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है कि 'जीवनमूल्य' शब्द का अर्थ जान ले। जीवनमूल्य शब्द 'जीवन' और 'मूल्य' इन दो शब्दों के मिलाप से बना है। जीवन याने जीवित रहने का भाव या जीवित रखनेवाली वस्तू[1] और मूल्य का सामान्य अर्थ है किमत। जिसका अंग्रेजी में पर्यायी शब्द है, 'प्राइज'[2]। मगर यहा पर मूल्य का अर्थ होगा वह गुण या तत्त्व जिसके कारण किसी वस्तु या व्यक्ति का महत्त्व या मान होता है।[3] इस तरह से जीवन मूल्य का अर्थ होगा मानव जीवन को समृद्ध बनाने वाले गुणविशेष या तत्त्व।

जिस मूल्य शब्द से हमारा प्रयोजन है, वह अंग्रेजी के व्हॅल्यूज[4] शब्द का अनुवाद है। जिसका अर्थ है, अच्छा, ठीक, इष्ट। इस तरह मूल्य की परिभाषा होगी, "जो इष्ट है, इच्छित है, वही मूल्य है।" इसमें इष्ट शब्द मूल्य का समानार्थी हो जाता है। मूल्य वस्तुतः इच्छाओं की पूर्ति के बाद आनंद मूलक स्थिति का पर्याय है।

भक्तिकाल तक मनुष्य की एक मात्र सार्थकता यही थी, कि वह अलौकिक सत्ता से तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा करे। लेकिन ज्यों-ज्यों हम आधुनिक युग में प्रवेश करते गये, त्यों-त्यों मानवोपरि सत्ता का अवमूल्यन होता गया। मानव गरिमा का उदय हुआ। यह भाव की दृढ़ हुआ की मनुष्य स्वयं में सार्थक और मूल्यवान है। मानव जीवन में अनेक आदर्शों की स्थापना होती है। आदर्श वस्तुतः एक मानसिक स्थिति है। यह स्थिति नये मूल्यों के निर्माण एवं पूराने मूल्यों के अनुसरण की प्रक्रिया प्रस्तुत करती है। उपर्युक्त विवेचन की मदद से हम 'जीवनमूल्य' को निम्नलिखित रूप में व्याख्यायित कर सकते हैं।

"मानव हृदय की अनुभूतियाँ, उसके द्वारा ग्रहण किया गया ज्ञान जो मानव को न केवल कर्म करने की प्रेरणा देते है, अपितु प्रत्येक वस्तु के प्रति उसका अपना निजी दृष्टिकोन भी निर्मित कर देती है। इस दृष्टिकोन को हम 'जीवनमूल्य' कह सकते है।"

---

1. नवलजी (संपादक), नालंदा विशाल शब्दसागर, (दिल्ली, आदर्श बुक डेपो, प्र. सं. 1951), पृ. 436.
2. Price.
3. नवलजी (संपादक), नालंदा विशाल शब्दसागर, (दिल्ली, आदर्श बुक डेपो, प्र. सं. 1951), पृ. 1113.
4. Values.

मानव मन 'जो कुछ है, वह ठीक है' इससे संतुष्ट नहीं होता। उसका जीवन भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीन रूपों में व्याप्त है। अतः बुद्धिजीवी मानव का हमेशा प्रयास रहता है, कि अतित से प्राप्त संस्कारों द्वारा वर्तमान में उपलब्ध स्थितियों तथा भविष्य की संभावना के माध्यम से जीवन के श्रेष्ठ तत्त्व को प्राप्त कर लें।

4.1.2 व्याप्ति :

मानव से संबंधित हर क्षेत्र में जीवनमूल्य व्याप्त है। डॉ. अंजूलता गौड कहती हैं, "सामाजिक परिवेश मूल्यों के निर्माण के कारण होते है। यह परिवेश निरंतर मूल्यों को संस्कारित कर नवीन मूल्य निर्धारित करता है।"[1]

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि मानव के व्यक्तित्त्व निर्माण से लेकर समाज के सभी क्षेत्रों में जीवनमूल्य व्याप्त है। जीवनमूल्यों की व्याप्ति को हम निम्न आधार पर विवेचित करेंगे।

क)	वैयक्तिक जीवनमूल्य	ख)	समष्टिगत जीवनमूल्य
ग)	आध्यात्मिक जीवनमूल्य	घ)	भौतिक जीवनमूल्य
च)	नैतिक जीवनमूल्य	छ)	सौंदर्यमूलक जीवनमूल्य

क) वैयक्तिक जीवनमूल्य :

कोई व्यक्ति जब अपनी भावना, इच्छा और संवेदना को विशेष मान्यता प्रदान करता है, तो उसे वैयक्तिक जीवनमूल्य कहा जाएगा। वैयक्तिक जीवनमूल्य व्यक्ति के निर्माण में सहायक होते हैं। यहाँ पर इस बात पर ध्यान देना अति आवश्यक है कि वैयक्तिक मूल्य व्यक्तिवाद का पर्याय कतई नहीं हो सकतें। वैयक्तिक जीवनमूल्य जहाँ आत्मा की आवाज है, वही 'व्यक्तिवाद' स्वार्थ से जन्मी हीन मनोवृत्ति है। व्यक्ति को समयानुसार परिष्कृत और सामान्य से विशिष्ट बनाने के लिए वैयक्तिक मूल्यों का योगदान आवश्यक है। दायित्वभाव, स्वाभीमान, व्यक्ति स्वातंत्र्य, सत्य, स्वावलंबन, इंद्रिय निग्रह, सौंदर्य तथा काम आदि मनोवृत्तियाँ वैयक्तिक जीवनमूल्य के रूप में ग्रहण की जा सकती हैं।

---

1. डॉ. श्रीमती अंजू लता गौड, हिंदी एकांकी में जीवनमूल्य, (मेरठ, शलभ प्रकाशन, प्र. सं. 1994), पृ. 12)

ख) समष्टिगत जीवनमूल्य :

समष्टिगत जीवनमूल्य समाज से संबंधित है जिसमें समाजहीत का भाव रहता है। मानवता, दया, त्याग, क्रांति, राष्ट्रचेतना, समन्वय, धर्म, परंपरा आदि अभिवृत्तियाँ समष्टिगत जीवनमूल्यों के ही अंग-प्रत्यंग है। समाज को विकास पथ पर अग्रसर करने के लिए इन अभिवृत्तियों का क्रियाशिल होना जरूरी होता है। समाज अपने में लक्षण, मान्यताएँ, धारणाएँ लिए चलता हैं। इन्हीं के सम्मिलन से संस्कृतियों का निर्माण एवं पोषण होता है। समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति में समष्टिगत मूल्यों की भूमिका अहम् हो जाती है।

ग) आध्यात्मिक मूल्य :

सामान्यत: जो मन आत्मा-परमात्मा से संबद्ध है, वही अध्यात्म है। भारतीय दर्शन-शास्त्री आत्मा की आदि अवस्था या स्वरूप के निरूपण को अध्यात्मशास्त्र कहते हैं। इस आत्मा की आदि अवस्था, गुण व स्वरूप को जानने की समस्त अंतरंग अभिवृत्तियाँ आध्यात्मिक जीवनमूल्य कहलाएगी। इस संदर्भ में धर्म, सत्य, शिव, सुंदर, शांति, त्याग, समर्पण आदि मनोवृत्तियाँ बताई जाती हैं।

आध्यात्मिक मूल्यों से जहाँ एक ओर मोक्ष प्राप्ति का मार्ग मिलता है, वही दूसरी ओर चरित्र की शुद्धि भी हो जाती है। विचारकों एवं विद्वानों ने मोक्ष को चरम मूल्य माना है। अत: मोक्ष के लिए किया गया दान, तप, त्याग, सेवा, शांति आदि तत्त्व इसके अंतर्गत आयेंगे।

घ) भौतिक जीवनमूल्य :

किसी वस्तु की उपयोगिता तथा भौतिक उत्पत्ति में सहायक होनेवाली अभिवृत्तियाँ भौतिक जीवनमूल्य हैं। कला, भौतिक सुविधाएँ और समाजसंस्थाएँ सभ्यताओं का निर्माण करती हैं। इनके माध्यम से ही मनुष्य उन्नत अवस्था की ओर अग्रसर होता है। साथ ही उसकी सभ्यता संस्कृति भी इसके लिए कारण होती है। हम देख सकते हैं कि ये मूल्य अन्य सभी प्रकार के मूल्यों को कम-अधिक मात्रा में अपने में समाए हुए हैं।

समाज में आज राजनीतिक एवं सामाजिक उथलपुथल से अंधाधुंदी मची हुई है। वैज्ञानिक एवं तंत्रज्ञान की प्रगति से अन्य मूल्यों की अपेक्षा भौतिक मूल्यों को प्रधानता मिली है। भौतिक जीवन मूल्यों में महत्त्वाकांक्षा, सर्जनशीलता, विज्ञाननिष्ठ दृष्टिकोण, साहस,

कार्यक्षमता, निर्णयशक्ति आदि वृत्तियों/गुणों को गिनाया जा सकता है। साहित्य को जरूरत है कि इन मूल्यों का दायरा बढ़ाकर इन्हें संपूर्ण विश्व हित और मानव कल्याण की दिशा में मोड़े।

च) नैतिक जीवनमूल्य :

नैतिक जीवनमूल्यों में नैतिक आचरण संबंधी बातों को समाहित किया जाता है। सामाजिक व्यवस्था, धर्म, आदर्श व्यवहार तथा राष्ट्रीय नियमों के प्रति सत्यनिष्ठ रहने का भाव आदि मंगलमयी भावों से निर्मित मान्यताएँ, संवेदनाएँ ही नैतिक जीवनमूल्य कहलाती हैं। मानव को समाजशील बनाए रखने के लिए नैतिक जीवनमूल्यों की स्थापना अनिवार्य है।

धर्म, त्याग, शांति, दया, मानवता, संवेदनशीलता, सहिष्णुता, ऐक्यभावना, एकनिष्ठता, आदि मनोवृत्तियाँ नैतिक जीवनमूल्य के रूप में बताई जाएगी।

छ) सौंदर्यमूलक जीवनमूल्य :

नैतिक और सौंदर्यमूलक जीवनमूल्य एक-दूसरे से संबंधित है। जब तक नैतिकता का आविष्कार नहीं होगा, सौंदर्यमूलक जीवनमूल्यों की उद्भावना नहीं हो सकती। इन मूल्यों के विकास में भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परिवेश का विशेष योगदान रहता है। प्रेम, आनंद, सौंदर्यपिपासा, मानवीय सौंदर्य, अंतर्सौंदर्य आदि इसके प्रमुख तत्त्व बताए जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के माध्यम से हम जीवनमूल्य की व्याप्ति को मानव एवं मानव से संबंधित हर क्षेत्र में पहचान सकते है। अत: यह कहना असमिचीन न होगा, कि जहाँ जीवन है, वहाँ जीवनमूल्य की उपस्थिति किसी न किसी रूप में अवश्य रहती है।

4.2 जीवनमूल्यों की आवश्यकता का महत्त्व :

पूर्व विवेचन में हमने देखा कि जीवनमूल्य मानव के हर कार्यक्षेत्र से संबंधित है। जीवनमूल्यों का निर्माण ही मनुष्य विकास के लिए आवश्यक गुणों के द्‍वारा होता है। जीवनमूल्यों का स्थान मानवी जीवन में सूर्यप्रकाश के समान है। इन्हीं जीवनमूल्यों के आधार पर ही मानव संस्कृति का निर्माण हुआ है। जब इन जीवनमूल्यों का अवमूल्यन होने लगता है, तब मानव एवं उसकी संस्कृति के अस्तित्व को आशंका घेरने लगती है।

कोई भी जीवनमूल्य समूल रूप में कभी भी नष्ट नहीं होता। हमारी विकास की गलत धारणाएँ, संकुचित मनोवृत्ति एवं अज्ञान के कारण जीवनमूल्य धूँधले जरूर हो गए हैं।

जीवनमूल्य आज के दौर में मानवता के रक्षण एवं मानव विकास को सही दिशा प्रदान करने के लिए आवश्यक है। उनके महत्त्व को हम निम्नलिखित रूप में रेखांकित कर सकते हैं -

अ) व्यक्ति का विकास एवं नैतिकता की स्थापना।

आ) समाज की समृद्धि एवं विकास।

इ) संस्कृति रक्षण और संवर्धन।

ई) धर्म की स्थापना एवं अनुशीलन।

उ) आत्मानुभूति।

अ) व्यक्ति का विकास एवं नैतिकता की स्थापना :

व्यक्ति समाज की अभिन्न इकाई है। व्यक्ति की बुद्धि और मन ही सारी क्रियाओं का उगमस्थान है। व्यक्ति को समृद्ध बनाने के लिए कला-कौशल के साथ जीवनमूल्य भी अत्यंत आवश्यक है। हर व्यक्ति समाज के लिए पोषक बन सकता है, जब वह अपने आप में समृद्ध हो। इस दृष्टि से उसमें स्वाभिमान, सत्यनिष्ठा, प्रेम, त्याग, धीरज, इंद्रिय-निग्रह आदि जीवनमूल्यों का विकास होना आवश्यक है।

वर्तमान समाज में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हो रही हैं, जिससे इन्सान में हैवानियत के लक्षण दिखाई देते हैं। ऐसे समय उसमें नैतिकता की स्थापना करना आवश्यक बन जाता है। व्यक्ति के स्वातंत्र्य को अबाधित रखते हुए उसे समाजशील बनाने का काम मर्यादा, संवेदनशीलता, समर्पण, समदृष्टि, इंद्रिय संयमन जैसे जीवनमूल्यों की स्थापना से संभव है। इस दृष्टि से शिक्षा व्यवस्था में व्यक्तित्त्व विकास को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। अत: 'डॉ. वाय. के. शिंदे' जी कहते हैं,

"भारत में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्त्व का विकास है, लेकिन दूर्भाग्यवश शिक्षाव्यवस्था व्यक्तित्त्व विकास केंद्रित न होकर इम्तिहान के चारों ओर घूम रही है।"[1]

शिक्षा के द्वारा मानव में कर्मनिष्ठा व कार्यकुशलता के साथ-साथ सत्यनिष्ठा एवं मानव धर्म की स्थापना होना आवश्यक है। इस दृष्टि से जीवनमूल्यों का महत्त्व बढ़ जाता है।

---

1. डॉ. वाय. के. शिंदे, व्यक्तिमत्त्व संजीवनी, (सांगली, एआरआरडीआय, प्र. सं. 1995), प्रस्तावना।

आज हम अर्थनीति, समाजनीति, राजनीति इन बड़े-बड़े शब्दों का उच्चारण करते रहते हैं; लेकिन ये शब्द व्यक्ति के भ्रष्ट आचरण के कारण अपने असली अर्थ को खोते जा रहे हैं। आज समाज है, राज है, अर्थ है, परंतु नीति का कहीं कोई ठिकाना नहीं है। व्यक्ति का यह नीतिशून्य व्यवहार उसे मानवता की गरिमा से पशुता की श्रेणी में ढ़केल रहा है। व्यक्ति को इस स्थिति से उँचा उठाने के लिए उसके मन पर जीवनमूल्यों के सुव्यवस्थित संस्कार की आवश्यकता है। समाज के सृजनशील अंगों के द्वारा व्यक्ति-व्यक्ति में सत्यनिष्ठा, कर्मभक्ति, श्रमप्रतिष्ठा, प्रेम, शांति, त्याग, संवेदनशीलता आदि सद्गुणों की जागृती करानी होगी।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं, कि व्यक्ति के सर्वांगिण विकास में मानवीय जीवनमूल्यों का अविष्कार अत्यंत आवश्यक है। इन्सान अपने जीवन में केवल भौतिक विकास के सहारे प्रेम, सुख, शांति, समाधान की अपेक्षा करेगा तो वह तत्त्व उसे हमेशा मृगजल के समान लुभाते रहेंगे। आज पाश्चिमात्त्य देशों में भौतिक विकास रोज नए-नए शिखर छूता दिखाई देता है, मगर क्या वे अपने जीवन में पूर्ण रूप से संतुष्ट है। सिर्फ भौतिक विकास के अट्टाहास ने उनके सामाजिक जीवन को तितर-बितर कर दिया हैं। आज विश्व के सर्वांगिण विकास एवं उत्थान के लिए आवश्यक है, कि वो पाश्चिमात्त्य वैज्ञानिक बुद्धि एवं भारतीय आध्यात्मिक हृदय के संतुलित मिलाप से सर्वमंगल की दिशा में कदम बढ़ाएँ।

आ) समाज की समृद्धि एवं विकास :

समाजहित के लिए मानवता, दया, त्याग, करूणा, नीति, परंपरा आदि जीवनमूल्यों को मानव मन में संस्कारित करना आवश्यक होता है। इससे समाज, देश तथा संसार का अस्तित्त्व अधिक बलशाली बनाया जा सकता है। व्यक्ति के अस्तित्त्व का प्रमुख आधार समाज ही है। संस्कृति का निर्माण भी समाज-समुदायों द्वारा होता है। समाज के विकास व समृद्धि के लिए जिन नियमों, परंपराओं, रीति-रिवाजों का निर्माण किया जाता है, उनमें जीवनमूल्यों की आवश्यकता रहती है। इस दृष्टि से ऐक्य भावना, सहिष्णुता, सहयोग भावना आदि जीवनमूल्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

इ) संस्कृति रक्षण और संवर्धन :

विशिष्ट विचारधारा एवं मान्यताओं से संस्कृति बनती है। इसी से व्यक्ति का जीवन सहज, सरल और सुंदर बनने में मदद मिलती है। संस्कृति की रक्षा व संवर्धन की दृष्टि से

मानव मन पर अच्छे संस्कारों की जरूरत होती है। इस क्रिया में सेवाभावना, राष्ट्रीय चेतना, सहिष्णुता, देशभक्ति, सौंदर्यपिपासा आदि जीवनमूल्य महत्त्वपूर्ण हैं।

संस्कृति संवर्धन की दृष्टि से सर्जनशीलता, विधायक दृष्टि, सद्सद्विवेक बुद्धि, साहसी वृत्ति आदि जीवनमूल्यों का निर्वाह करना आवश्यक है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने भारतवर्ष को पारसमणि और स्वर्णभूमि घोषित करते हुए तत्कालिन अखंडता, स्वतंत्रता, निर्भयता और देशभक्ति की कमी पर जो खेद व्यक्त किया, उससे यह पता चलता है कि वे इन मूल्यों को कितना महत्त्व देते थे। इन्हीं मूल्यों के आधार पर संस्कृतियों एवं परंपराओं का निर्माण होता है। जिससे मानव एवं मानवता को समृद्ध बनाया जा सकता है।

ई) धर्म की स्थापना एवं अनुशीलन :

आज विश्व में अनेक धर्म के लोग जीवनयापन कर रहे हैं। हर कोई अपने धर्म पर गर्व करता है। 'धर्म' सिर्फ विचारों, ग्रंथों तक सीमित विषय नहीं है। वह आचरण की विषयवस्तु है। आज हर एक धर्म में ऐसे धर्मांध लोग देखे जाते हैं, जो अपने ही धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। अपने धर्म की श्रेष्ठ बातों का अनुकरण न करके उन बातों के बखान से सिर्फ अपने मिथ्या अभिमान, गर्व का पोषण कर रहे हैं। धर्म को कमीज की तरह हँगर पर लटकाकर दिखावे की चीज बनाया गया है। जिससे धर्म की सच्ची बातें आचरण से दूर पड़ी है। इसी वजह से जितने भी समाजसुधारक, धर्मोद्धारक एवं दार्शनिक हुए उन्होंने सत्य, दया, सेवाभावना, त्याग, शांति आदि धर्मसंबंधी अभिवृत्तियों का पोषण किया।

धर्म स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने का रास्ता है। वह आत्मशुद्धि का मार्ग है। मोक्ष का साधन है। अत: उसको प्रत्यक्ष आचरण में उतारना ही विश्व के लिए कल्याणकारी होगा। इस कार्य में सर्वधर्मसहिष्णुता, संवेदनशीलता, ऐक्यभावना, सांप्रदायिक सौंहार्द, विवेक आदि जीवनमूल्य अत्याधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

उ) आत्मानुभूति :

मनुष्य का अपने जीवन में सर्व प्रमुख लक्ष्य हो कि वह अपने आप को जाने। अपने जीवन के प्रयोजन की टोह ले। स्व-का अनुभव ले और समस्त विश्व के मंगल के लिए उस अनुभूति को अभिव्यक्त कर सके। इस संदर्भ में आध्यात्मिक मूल्यों की जागृति कराना महत्त्वपूर्ण है। 'श्रीमती अंजू लता गौड' लिखती हैं -

"आत्म शुद्धि के द्वारा देवत्त्व की प्राप्ति के निमित्त किया गया जप, तप, त्याग, दान आदि अभिवृत्तियों से उत्पन्न मूल्यों को आध्यात्मिक मूल्य कहा गया है। इस मूल्य के माध्यम से स्व-पहचान का द्वारा खूल जाता है। आदमी आदमी में ईश्वर दर्शन होने लगते है।"[1]

स्वामी विवेकानंद अपनी 'द लिविंग गॉड' कविता में लिखते हैं, "जो तुझमें और तेरे बाहर है, जो सारे हाथों से काम करता है, सारे पैरों से चलता है, जो सारे शरीरों में विद्यमान है, उसे अपना पूजनीय बना बाकी सारे आदर्श व्यर्थ है।"[2]

इस तरह से विश्वपुरुष के प्रति इन्सान में सेवाभावना निर्माण करने से विश्वकल्याण होगा। सच्चा धर्म आत्मा में सर्वोच्च सत्ता की स्थापना करके अन्य सारी कुवासनाओं, गलत प्रथाओं एवं धारणाओं पर कुठाराघात करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जीवनमूल्य आदमी के लिए प्राणवायू के समान या उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। स्वार्थपरवश होती राजनीति, विघटन को प्राप्त हो रही समाज व्यवस्था, परिवारों में चल रही अनबन, पर्यावरण का असंतुलन, सांप्रदायिक दंगे, विश्व अशांति आदि समस्याओं की जड़ में मानवीय जीवनमूल्यों का अवमूल्यन प्रमुखता से विद्यमान है।

अत: मानवीय जीवनमूल्यों को पुन: सर्वांगिण एवं परिपुष्ट रूप में व्यक्ति-व्यक्ति में संस्कारित करना होगा। आज जो सामाजिक, शैक्षिक एवं आध्यात्मिक संस्थाएँ इस दिशा में कार्यरत है, उन्हें अपने प्रयासों को और बलवती करना होगा। साहित्य क्षेत्र इस दिशा में प्रेरणा और दिशादर्शन की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

---

1. डॉ. श्रीमती अंजू लता गौड, हिंदी एकांकी में जीवनमूल्य, (मेरठ, शलभ प्रकाशन, प्र. सं. 1994), पृ. 15.
2. Swami Vivekanand, I Am A Voice Without A Form, (Hydrabad, Ramkrushna Math, 9th Edt., 2010), Page No. 128.

4.3 विवेकानन्द उपन्यास में जीवनमूल्य :

कई बार कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। यह बात पूर्ण सत्य नहीं है। दर्पण सिर्फ उसके सामने खड़े रहनेवाले की हू-ब-हू तस्वीर दिखाता है। साहित्य इससे ज्यादा अर्थ रखता है। साहित्य समाज की छवी दिखाने के साथ उसमें आदर्शवत बदलाव के लिए आदर्शों की स्थापना करता है।

आज की विषण्ण परिस्थितियों में मानव जीवन मूल्यविहीन होने लगा है। आज विश्व के सभी क्षेत्र की समस्याओं का कारण यही मूल्यविहीनता है। आज समाज में उन मूल्यों के पुनर्स्थापना की जरूरत बढ़ गई है। इस संदर्भ में साहित्य की भूमिका अनन्यसाधारण बन जाती है। जिसके निर्माण में अन्य उद्देश्यों की अपेक्षा लोकमंगल की भावना को प्रमुखता रहती है। डॉ. भटनागर जी का 'विवेकानन्द' उपन्यास इसी कड़ी की महत्त्वपूर्ण किताब है। जिसमें भारतीय नवजागर के अग्रदूत स्वामी विवेकानन्द के जीवन को चित्रित किया गया है। इस दृष्टि से हम 'विवेकानन्द' उपन्यास में स्थापित जीवनमूल्यों की चर्चा करेंगे।

1. स्वाभिमान
2. सर्जनशीलता एवंम् श्रमप्रतिष्ठा
3. विवेकबुद्धि
4. सर्वधर्मसहिष्णुता
5. साहस एंव भयरहित जीवन
6. त्याग और समर्पण
7. वैज्ञानिक दृष्टिकोन
8. समदर्शन
9. सेवावृत्ति
10. निष्कामवृत्ति

1. स्वाभिमान :

स्वाभिमान या आत्मगौरव विहीन जीवन मनुष्य को दूसरों के अंधानुकरण के रास्ते पर ला खड़ा करता है। उसमें अपने प्रति और अपने समाज एवं संस्कृति के प्रति न्यूनता की भावना उभरती है। भारत भ्रमण के दरम्यान गंगा (नदी) विवेकानन्द से पुछती हैं,

''मैंने सोचा था, जैसे देवलोक, स्वर्गलोक आदि में वहाँ के रहनेवालों को अपने लोक पर गर्व है, स्वाभिमान है, वैसे मृत्यूलोक के बारे में यहाँ के लोग क्यों नहीं सोचते?''[1]

---

1. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर , विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, द्वितीय सं. 2007), पृ. 14.

प्रस्तुत विचार स्वामीजी का ही मंथन है जो लेखक ने नाटकीय रूप में उपस्थित किया है। भारत भ्रमण में स्वामीजी ने देखा कि गरीबी, अंधविश्वास, कर्मशून्यता के कारण भारत विश्वधरातल पर पिछड़ रहा है। इन समस्याओं के मूल में आत्मबलहीन अवस्था है। अत: उन्होंने अपने व्याख्यानों एवं उपदेशों से जन-जन में स्वाभिमान जागृति का अग्निकुंड जलाया। उनके विश्वधर्म सभा में दिए गये पहले भाषण का कुछ अंश देखिए,

"मुझे उस धर्म का अनुयायी होने का गौरव है, जिसने जगत् को समदर्शी बनने तथा सार्वभौम धर्म को अंगिकृत करने की शिक्षा चिरकाल से प्रदान की है। हम लोग धर्म के प्रति मात्र समदर्शन में विश्वास नहीं करते प्रत्युत सब धर्मों को सत्य समझकर उनमें विश्वास करते हैं।"[1]

यहाँ पर स्वाभिमान का मतलब सिर्फ स्वयं को ही श्रेष्ठ मानना नहीं है। हम 'मेरा भारत महान' को 'मेरा भारत भी महान' के रूप में ले। यही आज के युग की माँग है। और यही सही रूप में स्वाभिमान है।

2. सर्जनशीलता एवम् श्रमप्रतिष्ठा :

आध्यात्मिक रूप में ईश्वरोपासना के चार प्रमुख मार्ग बताएँ गए है - भक्ति, ज्ञान, योग और कर्म। ये चारों एक-दूसरे के परस्पर पूरक है। सिर्फ थोथा ज्ञान या भगवान के नामस्मरण से कुछ हासिल नहीं होगा। आदमी को चाहिए कि वो कर्मशील रहें। ज्ञान व भक्ति युक्त कर्मोपासना की आज सही अर्थ में आवश्यकता है।

प्रस्तुत उपन्यास में स्वामीजी द्वारा भारत दुर्दशा पर शंकाएँ उपस्थित करने पर रामकृष्ण परमहंस कहते हैं -

"संशय को कर्म काटते है।
तू कर्म कर, संपूर्ण समर्पण से कर
और यह कह कर की जग का शिव होगा।"[2]

और एक प्रसंग में स्वामीजी अलवर नरेश मंगलसिंह को कर्मपथ पर वापस लाने के उद्देश्य से उपदेश देते हुए कहते हैं -

1. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर, विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, द्वितीय सं. 2007), पृ. 197.
2. वही, पृ. 24

"उद्यम् करने से पापों का क्षय होता है। और कर्म का प्रकाश जीवन में नवस्फूर्ती, नव-मंगल की भावना और नवदृष्टि देता है।"[1]

इसी तरह शिकागो की यात्रा में नौसरवान जी टाटा विवेकानन्द से भारतीयों में उद्योग की सृजनशालाओं के प्रति समर्पित होकर कर्म के स्वाभिमान को अपने से अभिव्यक्त होने की जरूरत पर बात करते हैं।[2]

हम देख सकते हैं कि कोई जीवनमूल्य स्वतंत्र रूप से उपस्थित नहीं होता। यदि व्यक्ति में आत्मगौरव, स्वाभिमान को जागृत करना है तो उसे कर्मशील बनाना पड़ेगा।

3. विवेकबुद्धि :

आज का युग वैज्ञानिक और सूचना तंत्रज्ञान के नाम से जाना जाता है। मगर आज भी समाज के हर स्तर में अनेक प्रकार के अंधविश्वास प्रचलित हैं। भगवद्गीता परिवर्तन को समाज-संसार का नियम बताती हैं। अत: इस परिवर्तन की प्रक्रिया को जान-समझकर उसे समाज, संस्कृति के नवनिर्माण में सहायक बनाना जरूरी होता है। इस कार्य के लिए आदमी में वैचारिक स्वतंत्रता, साहस का होना अनिवार्य है। आदमी का सद्सद्विवेक बुद्धि से प्रेरित होना आवश्यक है। इस संदर्भ में 'विवेकानन्द' उपन्यास में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रसंग निर्मित किए गए हैं।

अलवर में स्वामीजी अपने मेजबान गुरूचरण लष्कर को विवेकबुद्धि का महत्त्व बताते हुए कहते हैं, "वस्त्र से चरित्र की पहचान नहीं होती। ..... साधु हो या सन्यासी पहले उसे परखो की क्या वह त्याग की भावना से लबालब है।"[3]

इसी तरह दक्षिण में अपने युवा भक्तों को बताते हैं,

"ठोंक बजाकर परिक्षा लिजिए। जब मन तैयार हो जाए तो आस्था व्यक्त कीजिए। परंतु जिसके प्रति आस्था व्यक्त की है, उसके कभी भी अन्धभक्त मत बनिए। अपने को सदा विवेकाश्रित रखिए।"[4]

---

1. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर, विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, द्वितीय सं. 2007), पृ. 41.
2. वही, पृ. 165.
3. वही, पृ. 28.
4. वही, पृ. 113.

विश्वधरातल पर एक महान धर्मसमन्वयक के रूप में विवेकानन्द की ख्याति इसी विवेकाश्रित बुद्धि के कारण फलश्रुत हुई है।

4. सर्वधर्मसहिष्णुता :

विवेकानन्द सारे धर्म एवं संप्रदायों को ईश्वरसम्मुख जाने का साधन मानते थे। सभी धर्मों की नींव प्रेम, शांति, मानवता, करूणा, अहिंसा आदि सर्वश्रेष्ठ तत्त्वों से बनी है। विवेकानन्द इसी कारण से धर्मांतर विरोधी थे। अलवर के एक प्रसंग में वो मौलवी से कहते हैं,

"ध्यान रहे मौलवी साहब, ऐसे शागीर्द पैदा करो जिनके दिमाग में मजहब-कौम की तंगदिली न हो।"[1]

हम देख सकते हैं कि वर्तमान समाज में धर्म के दिखावे के साथ अपने ही धर्म, पंथ को सर्वश्रेष्ठ मानने का जो अट्टाहास चल रहा है, उस कारण संसारभर में अशांति का माहौल छाया हुआ है।

21 वीं सदीं में हर इन्सान को अपने धर्म के सच्चे स्वरूप को आचरण में लाने की आवश्यकता है। इसी से वह दूसरे धर्मों को भी सही रूप एवं अर्थ में पहचान सकेगा। ऐसी समदृष्टि का अनुपात कर सकेगा जो विवेकानन्द के व्यक्तित्त्व में उनके जीवन के हर प्रसंग में दिखाई देती है। किसी ने सही कहा है कि विश्व को आज एक नए धर्म के बजाए एक ऐसे धागे की जरूरत है, जो सब धर्मों को एक सूत्र में बाँध सकें। यही इन्सानियत के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।

5. साहस एवं भयरहित जीवन :

आज हर आदमी डर के साये में जी रहा है। धर्म, समाज, युद्ध, प्राकृतिक प्रकोप, मृत्यू आदि का डर उसे पतन एवं संकुचितता के रास्ते पर ले जा रहा है। डर इन्सान को सिर्फ अधोगति के रास्ते पर ही ले जाता है। स्वस्थ व सुंदर समाज निर्माण में आदमी का भयरहित होना यह पहली आवश्यकता है। इस दृष्टि से भटनागर जी ने प्रस्तुत उपन्यास में निम्नलिखित प्रसंगों द्वारा साहस एवं निड़रता की आवश्यकता और महत्त्व को रेखांकित किया है।

विवेकानन्द अब्दुल हकीम से भय के दुष्परिणामों के बारे में बताते हुए कहते हैं,

---

1. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर, विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, द्वितीय सं. 2007), पृ. 36.

''भयरहित हो जाओ; भय ही पाप है, भय ही मृत्यू है। भय ही नरक है। भय ही व्यभिचार है। जो मिथ्याभाव, असत् है, वह भय की उत्पत्ती है।''[1]

शिकागों की समुद्री यात्रा में जहाज के सहयात्रियों को संबंधित करते हुए विवेकानन्द साहस के महत्त्व को बताते हैं,

''मौत का डर लोगों में स्थायी तौर पर घर करने लगे, तो लोग जोखिम भरे खतरनाक काम करना ही छोड़ दे। क्या माउंट एव्हरेस्ट पर लोगों ने चढ़ना छोड़ दिया, जबकी अब तक वहाँ तक कोई नहीं पहुँच सका और कितनों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।''[2]

आज हम देख सकते है कि मौत से सामना करने के साहस के कारण ही आज काफी मात्रा में लोग एव्हरेस्ट पर जा रहें है। उनमें महिला, बच्चों के साथ-साथ विकलांग लोग भी शामील हैं।

जहाज में एलसा मोरान्तो एवं बोल्शेवों को आत्महत्या की मानसिकता को डर की उपज बताते हुए स्वामीजी निडर होने का संदेश देते हैं। भय के कारण आदमी स्वबोध से परे होकर आत्मघाती कृत्य को तत्पर होता है।[3]

इस तरह कहना पडेगा, कि भयरहित जीवन समृद्ध समाज के लिए नितांत आवश्यक है। इससे व्यक्ति में आत्मविश्वास जगता है। व्यक्ति, समाज एवं संस्कृति के रक्षण, संवर्धन व उन्नति के लिए साहस और निडरता का कोई पर्याय नहीं है।

6. त्याग और समर्पण :

व्यक्ति एकसमाजशील प्राणी है। अत: समाज उसके अस्तित्त्व का आधार है। मगर 20 वी सदी के उत्तरार्ध से विघटन का दौर शुरू हुआ है। जिसमें बँटवारे की प्रवृत्ति ने देश, समाज, परिवारों को खोखला कर दिया है। स्वार्थलिप्त प्रवृत्ति ने पाने या हासिल करने तक ही जीवन के अर्थ को सीमित कर दिया है। डॉ. भटनागर जी ने प्रस्तुत उपन्यास में विवेकानंद के चरित्र के माध्यम से त्याग, समर्पण जैसे मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना करने की कोशिश की है।

---

1. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर, विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, द्वितीय सं. 2007), पृ. 43.
2. वही, पृ. 152.
3. वही, पृ. 160.

स्वामीजी मद्रास में अपने शिष्य सिंगारवेलू मुदलियार और उनके छात्रों को संबोधित करते हुए समर्पण के महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं,

''जो भी प्राप्त हो रहा है, वह सर्वहीत में त्याग के लिए है। ... खाओ तो समाज के हित के लिए, पहनों तो समाज के सौंदर्य के लिए, पढ़ो तो समाज के शिव के लिए, जो प्राप्त किया है, वह सर्वस्व, सहर्ष दान करों। देह है तो दान करो, विवेक है तो दान करो।''[1]

स्वामीजी उच्च विचारों के कथन के साथ उसके आचरण की शुरूआत खुद से करने वाले महान कर्मयोगी थे। उनका संपूर्ण जीवन त्याग व समर्पण का प्रतिक है। उन्होंने मानव के नवजागरण में अपना घर, मात, पिता, गृहस्थी के साथ-साथ मोक्ष या मुक्ति की अभिलाषा को त्यागकर सर्वहीत में मानवसेवा का व्रत धारण किया।

7. वैज्ञानिक दृष्टिकोन :

संसार परिवर्तनशील है। अत: उसमें बदलाव एवं नवनिर्माण में वैज्ञानिक दृष्टिकोन का महत्त्व बढ़ जाता है। डॉ. वाय. के. शिंदे लिखते हैं, ''समय की माँग को जानते हुए चिकित्सक एवं मूल्यमापनात्मक दृष्टिकोन से योग्य बातों का स्विकार एवं अयोग्य बातों का अस्विकार करने की अभिवृत्ती धारण करना ही वैज्ञानिक दृष्टिकोन कहलाएगा।''[2]

'विवेकानन्द' उपन्यास में विवेकानन्द के हर कार्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोन की झलक मिलती है। अपने बाल्यकाल में एक व्यक्ति द्वारा ब्रह्मराक्षस का डर दिखाने पर अपने साथियों को सचेत करता हुआ नरेंद्र कहता है :-

''याद रहे, हर वस्तु की परख करों, उस पर खुब विचार करों - आँख मूँद कर विश्वास करना मूर्खता है।''[3]

विवेकानन्द आजन्म विवेकाश्रित रहें। उनका किसी तरह के चमत्कार में विश्वास नहीं था। उनके वैज्ञानिक दृष्टि का पता खेतडी में पंडित नारायणदास के वार्तालाप से स्पष्ट होता है -

''तुने राजप्रासाद के ऊपरवाले हिस्से में एक प्रयोगशाला स्थापित की है। उसकी छत पर दूरबीन लगवाई है। तुझे ग्रह-नक्षत्रों का भी अच्छा ज्ञान है। विज्ञानी सन्यासी।''[4]

---

1. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर, विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, द्वितीय सं. 2007), पृ. 105.
2. डॉ. वाय. के. शिंदे, व्यक्तिमत्त्व संजीवनी, (सांगली, एआरआरडीआय प्रकाशन, प्र. सं. 1995), पृ. 131.
3. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर, विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, द्वितीय सं. 2007), पृ. 234.
4. वही, पृ. 68.

वैज्ञानिक दृष्टिकोन के लिए संवेदनशीलता, जिज्ञासु वृत्ति, मूल्यमापनात्मक दृष्टि, सत्यनिष्ठा, वस्तुनिष्ठता, रचनात्मक दृष्टिकोन आदि बातों का होना जरूरी है। ये सभी गुण विवेकानन्द के चरित्र में देखे जा सकते हैं।

8. समदर्शन :

समदर्शन एक आध्यात्मिक एवं सामाजिक मूल्य है। भारत के संविधान में प्रतिष्ठा और अवसर के संदर्भ में समता की बात आयी है। स्त्री-पुरुष समानता, धर्मनिरपेक्षता की बात की गई है। ये बातें सिर्फ कागजों और कानून तक सीमित रहना ठीक नहीं। हर व्यक्ति के मन पर ये संस्कार होना जरूरी है। इस हेतु मानव मात्र में समदर्शन का मूल्य स्थापित करना आवश्यक है। डॉ. शेख रब्बानी का कहना है,

''सच्चे और पवित्र प्रेम में परस्पर स्विकार और सत्कार होता है। प्रेम संसार की सर्वाधिक पवित्र वस्तु और आत्मा का भोजन है। वह व्यक्ति और समाज की प्रगति में सहायक है।''[1]

ऐसे प्रेम के साथ ही संसार भर में समदर्शन की भावना को जागृत किया जा सकता है। खेतडी के राजदरबार में भारत के पुनरूत्थान के लिए स्वामीजी आदमी को कर्मठ बनने और भेद भित्तियाँ गिराकर सबको गले लगाने का संदेश देते है।[2]

खेतडी के राजदरबार में स्वामीजी भेदबुद्धि के वश में नर्तकी की उपेक्षा करते हैं। बाद में उसके प्रार्थनास्वरूप मंगल विचारों से प्रेरित होकर उससे क्षमाअर्चना करते हुए कहते हैं,

''माते, मुझसे बहुत बड़ा अपराध हुआ। मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखा। अपवित्र माना। हे ज्ञानदायिनी माँ, तुमने मेरी आँखे खोल दी अन्यथा मैं भेदबुद्धि लिए सत्य से दूर ही पड़ा रहता।''[3]

इससे स्पष्ट हो जाता है, कि यदि हम समाज में सुधार, परिवर्तन लाना चाहते है, तो हमें भेदाभेद की दृष्टि को हटाकर समदर्शन की दृष्टि को अपनाना होगा।

---

1. डॉ. शेख रब्बानी, हिंदी उपन्यासों में समाज परिवर्तन, (इलाहाबाद, साहित्य-निलय प्रकाशन, प्र. सं. 2007), पृ. 140
2. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर, विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, दृवितीय सं. 2007), पृ. 73.
3. वही पृ. 79.

9. सेवावृत्ति :

आत्मविकास के लिए कोई एक जीवनमूल्य स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करता। हर एक मूल्य एक-दूसरे से संबंधित और पुरक है। समाज के शिव के लिए संवेदनशीलता एवं समदर्शन जैसे मूल्यों को सेवावृत्ति की जोड़ मिलना आवश्यक है।

'विवेकानन्द' उपन्यास में शिकागो यात्रा में जहाज के कप्तान रायइटर स्वामीजी से यात्रियों की सुरक्षा एवं मनोधैर्य बढ़ाने के लिए प्रार्थना शुरू करवाने को कहकर अपनी सेवाभावना का परिचय देते हैं।[1] सेवा यह जज्बा आज समाज में कम होता नजर आता है। इस पर विवेकानंद के विचार सोचनीय है,

"संसार का रूप परिवर्तनीय है। मानव जीवन सीमित है। मगर वो मरकर भी अमर हैं, जो औरों के लिए जिते हैं। बाकी सब जीवित होते हुए भी मृतक के समान है।"[2]

विवेकानन्द का जीवन संपूर्ण मानव जाति के कल्याण की कामना का ही प्रतीक था। मानव सेवा के आगे उन्होंने समाधि को भी तुच्छ माना। ब्रह्मपद को भी ठुकराया।

स्वामी विवेकानन्द 'यत्र जीव तत्र शिव' को मानते थे। अत: वे अपने अंतिम समय तक मानव सेवा में कार्यरत रहें। अपने अंतिम क्षणों में सेवक शिष्य विजेंद्र से उनका निम्नलिखित कथन मार्मिक है,

"शंख बजाना व्यर्थ है, घंटी-घंटी खड़खड़ाना व्यर्थ है, पढ़ना-लिखना व्यर्थ है और मोक्ष पाने के लिए प्रयत्न करना निरा पागलपन है। दरिद्री नारायण की सेवा का व्रत लेकर गाँव-गाँव निकल पड़ना ही सार्थक है, सर्वहीत में है।"[3]

10. निष्कामवृत्ती :

कबीर जी निष्काम सेवा का संदेश देते हुए कहते हैं,

> "निज स्वारथ के कारनै, सेवा करै संसार।
> बिन स्वारथ भक्ति करे, सो भावे करतार।"[4]

---

1. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर, विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, द्वितीय सं. 2007), पृ. 146.
2. Swami Vivekanand, I Am a Voice Without A Form, (Hydrabad, Ramkrushna Math, 9th Edt. 2010) Page No. 23.
3. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर, विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, द्वितीय सं. 2007), पृ. 266.
4. कबीर, कबीरवाणी, (दिल्ली, मनोज प्रकाशन, आठवाँ सं. 2010), पृ. 165.

फल की अपेक्षा आदमी में लगाव उत्पन्न करती है। इससे सुख-दु:ख की उत्पत्ति होती है। लगाव आदमी की राह में रूकावट पैदा करता है। फिर चाहे अच्छे के प्रति हो या बुरे के प्रति। इस पर 'विवेकानन्द' उपन्यास का उद्धरण द्रष्टव्य है। जिसमें स्वामीजी अपने गुरूभाई प्रेमानंद में अपने प्रति लगाव को देखते हुए कहते हैं :-

"प्रेमा, मोह नहीं, ...अपने प्रति भी नहीं, अपने आत्मीय जन के प्रति भी नहीं। नदी की गति बहने में ही है, वह बहेगी, निरंतर बहती रहेगी तब तक नदी है।"[1]

आज के मल्टीमिडिया के दौर में सब के सिर पर प्रसिद्धि की भूत सवार है। छोटे-से लेकर बड़े-बड़े जो भी कार्य हो रहे हैं, उनको लेकर श्रेयवाद की लड़ाई जारी है। इससे इन्सान में अहंकार का पोषण होता है। व्यक्ति के आत्मिक विकास के लिए अहंकार का समर्पण पहली शर्त है। 'मैं' पण के समर्पण बिना आदमी स्व: का अनुभव नहीं कर सकता। विश्व के जितने भी महापुरुष हुए, उन्होंने अपने जीवन में निष्काम सेवाभाव को अपनाया। इस दिशा में प्रकृति से हम सबसे बड़ा बोध पा सकते हैं। अमरिका के इनिस्क्वाम में स्वामीजी का प्रो. हेनरी राइट से निम्न कथन देखिए,

"प्रोफेसर, समय बचाने की चिंता छोड़ो, व्यय करने पर ध्यान दो। जितना हो सके उतना समय का सदुपयोग करो और पेड़, नदी, सूर्य की किरणों, वर्षा आदि की तरह परोपकार करो, आनंदीत रहो।"[2]

इस तरह डॉ. भटनागर जी ने विवेकानन्द के जीवन चरित्र के माध्यम से दिशाहीन और मूल्यविहीन अवस्था की ओर बढ़ती समाज व्यवस्था में आदर्श जीवनमूल्य की उपस्थिति कराने का सफल प्रयास किया है।

निष्कर्ष :

किसी भी समाज की पहचान उसकी संस्कृति से होती है। यही उसके अस्तित्त्व का आधार है। संस्कृति के निर्माण में जीवनमूल्यों का कार्य प्रमुख है। मानव में जब-जब इन जीवनमूल्यों की कमी आयी, तब-तब मानवता, समाज और संस्कृति पर गहरे आघात हुए है। इस दिशा में डॉ. भरतकुमार सिंह के निम्नांकित विचार विशेष महत्त्व रखते हैं :-

1. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर, विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, द्विवितीय सं. 2007), पृ. 258.
2. वही पृ. 186.

"आज मनुष्य अस्तित्त्वहीनता, लघुता में जी रहा है। जो समाज में हो रहा है, उसे लेकर समाज विशृखंलित हो तार-तार हो रहा है। ऐसे समय मानुष को अमानुष बनने की प्रक्रिया से रोकने के लिए धैर्य, संयम, उत्साह, कर्मशीलता, निडरता आदि जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठापना आवश्यक है।"

डॉ. सिंह ने उपर्युक्त जिन जीवनमूल्यों का जिक्र किया हैस उसके लिए आवश्यक है कि समाजसम्मुख ऐसे आदर्श चरित्रों की उपस्थिति करायी जाए जिन्होंने अपने जीवन में उन मूल्यों का निर्वाह किया हो, इस दिशा में डॉ. भटनागर जी का कार्य महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति व समाज के सर्वांगिण विकास के लिए जिन जीवनमूल्यों की आवश्यकता होगी, वो सारे हमें विवेकानन्द के चरित्र से मिलेंगे। इस संदर्भ में प्रस्तुत उपन्यास में प्रो. हेनरी राइट का विवेकानन्द के लिए धर्मसभा समिति को लिखे गए परिचय पत्र का कुछ अंश अत्यंत महत्त्वपूर्ण है -

"... वे उदरवादी, मानवताप्रिय, गहन अन्तर्दृष्टि रखनेवाले, निश्चल, सहज और समस्त जातियों को परोपकार, करूणा, मुदिता आदि जन्मजात गुणों की शृंखला से जोड़नेवाले महान व्यक्ति हैं।"[1]

इस तरह डॉ. भटनागर जी का 'विवेकानन्द' उपन्यास जीवनमूल्यों की खदान है। जिसके माध्यम से व्यक्ति का आत्मिक विकास संभव हो पायेगा। समाज समृद्धि के कार्य को सही दिशा और गति प्रदान की जाएगी।

युवक अनुकरणशील होते हैं। वे हमेशा आदर्शों का अनुकरण करते हैं। मगर जब प्रत्यक्ष जीवन में कोई आदर्श हीरो दिखाई नहीं देता, तो वे फिल्मी दुनिया की ओर आकर्षित होते हैं। उनका अनुकरण करने लगते हैं, बिना अच्छे-बुरे का विचार करें। अत: ऐसे समय उनके सामने अतित एवं वर्तमान समय के सही आदर्शों की स्थापना करना आवश्यक बन जाता है। जो काम साहित्य बखुबी कर सकता है। कर रहा है। इस दिशा में डॉ. भटनागर जी का 'विवेकानन्द' उपन्यास विश्व साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

1. डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर, विवेकानन्द, (दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, द्वितीय सं. 2007), पृ. 186.